संपादकीय

श्रम, कर्म और रोजगार का बदलता परिप्रेक्ष्य

आधुनिक समय में श्रम व कर्म का वजन और उदात्तता शनैः शनैः क्षीण होकर रोजगार व पेशे के संकुचन में सिमट गई है। बहरहाल, एक मई को जो 'मई दिवस' मनाया जाता है, उसे परिश्रम करके अपनी जीविका चलाने वाले कामगारों, मेहनतकशों पर फोकस रखने की परंपरा रही है। यह कामगार चेतना का उत्सव है। फ्रांस की राज्य क्रांति, अमेरिका की आजादी, इंगलैंड की औद्योगिक क्रांति के बाद पहले यूरोप में, फिर विश्व भर में कल-कारखानों का जाल फैलने लगा, फलतः बृहद् पैमाने पर कामगारों की जरूरत उत्पन्न हुई, रोजगार का अवसर सृजित हुआ। उत्पादन में जबर्दस्त बढ़ोतरी के साथ आरंभ में कार्य में आकर्षण व संतुष्टि प्राप्त तो हुई, पर धीरे-धीरे काम के घंटों, स्वास्थ्य चिंताओं तथा उचित पारिश्रमिक को लेकर असंतोष भी व्याप्त होने लगा। कई आधुनिक विचारणाओं के अभ्युदय की तरह श्रमिक संगठन भी सर्वप्रथम इंग्लैंड में ही अस्तित्व में आए। उन्नीसवीं सदी के अंत तक ये काफी सशक्त हो गए, अन्य देशों में भी पनपकर फैलते गए। दूसरी ओर, अमेरिका में 1834 ई. में 'नेशनल ट्रेडर्स यूनियन' अस्तित्व में आई। 1860 ई. का गृहयुद्ध भी वहाँ कामगारों को संगठित करने में परोक्षतः मददगार साबित हुआ। तब तक कार्मिकों को 12.14 घंटे ही नहीं, 18.20 घंटे तक काम करना पड़ता था, जो स्वैच्छिक न होकर पूर्णतः अनिवार्य था। इसके लिए अलग से मेहनताना के रिवाज का सवाल ही कहाँ था; हाँ, कहीं-कहीं कुछ पुरस्कारस्वरूप देने का ऐच्छिक अपवाद जरूर था। 1865 ई. तक आते-आते श्रम संगठनों की दीर्घकालिक माँग के अनुकूल पूरे अमेरिका में कानून द्वारा काम के घंटे दस घंटे निश्चित कर दिए गए थे। 1882 ई. से इन्हें कम करके 8 घंटे करने की मांग उठी। 1886 ई. में शिकागो की हड़ताल की यह प्रमुख मांग थी। इन अलग-अलग घटनाओं की पृष्ठभूमि में 1889 ई. के पेरिस सम्मेलन में फ्रांस की क्रांति और 1886 ई. में शिकागो में मारे गए हड़तालियों की याद में 'अंतर्राष्ट्रीय कामगार दिवस' मनाने की शुरुआत हुई।

भारत में 1923 ई. में मद्रास हाई कोर्ट के सामने प्रदर्शन से इसे जोड़ा गया है। इसी में इसे 'मद्रास दिवस' की जगह 'अंतर्राष्ट्रीय कामगार दिवस' के रूप में याद करने का प्रस्ताव किया गया। वर्तमान में भारत सहित लगभग 80 देशों में 1 मई को कामगार दिवस मनता है। पहले कभी उत्तरी गोलार्द्ध के यूरोपीय देशों में वसंतोत्सव के स्वागत के तौर पर 1 मई को आयोजन होता था। यह सुखद संयोग है कि यह दिन मानवीय वसंत की निर्मिति के सबसे बड़े सूत्रधार 'श्रम' और 'कर्म' करने वालों से भी जुड़ गया है। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र का 'अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ' श्रम मुद्दों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय कानूनों व व्यवहारों पर नजर रखता है। 188 देश इसके सदस्य हैं। इसके दिशा-निर्देशों के आलोक में सदस्य देश भरसक अपने-अपने यहाँ नीतियाँ, नियम और योजनाएँ चलाते हैं, कम-से-कम उनका उल्लंघन न हो - इसका ख्याल रखते हैं। भारत में सरकार ने 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय श्रमेव जयते' कार्यक्रम के अंतर्गत श्रम सुधार योजनाओं को आगे बढ़ाने का सघन प्रयास शुरू किया है, जिनमें औद्योगिक कौशल विकास, भविष्य निधि संचालन, उपक्रमों के निरीक्षण से जुड़े मसलों पर ज्यादा जोर है। सरकार का सारा ध्यान निवेश बढ़ाने के साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने पर है, जिनका आकलन किया जाना अभी शेष है।

गौरतलब है कि जैसे-जैसे उद्योग-धंधों, कल-कारखानों का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे कार्य करने वालों और कार्य करवाने वालों का संबंध श्रम और पारिश्रमिक के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगा। इन दोनों में एक तरह की होड़ उत्पन्न होती गई, नए ढंग का श्रमशास्त्र खड़ा होता गया, यूनियनें बनीं और व्यवसायी भी संगठित हुए। पहले जो मालिक और कामगार परस्पर हितों के लिए तत्पर रहते थे, वे स्वयं के हितों के लिए एक-दूसरे से टकराने लगे। आलम यह है कि स्वामी जहाँ अधिकतम काम कराकर न्यूनतम पारिश्रमिक देने की मंशा रखता है, वहीं कामगार न्यूनतम काम करके अधिकतम वेतन, सुख-सुविधाएँ हासिल करने के लिए जूझता है। यद्यपि सरकार, संस्था, यूनियन आपस में वार्ता कर संतुलन साधने का प्रयास करते रहते हैं, तथापि यह घर्षण कमोबेश हर स्तर पर जारी रहता है। दबाव समूहों व स्वार्थी समूहों के पसरते जाने के कारण यह समस्या विकराल हुई है, इनमें भी बिचौलिया तत्व हरएक जगह प्रभावी है। उद्योग-धंधां के बेतरतीब विस्तार, असंतुलित-अनियोजित विकास, अव्यवस्थित-अराजक शिक्षा संरचना में दूरगामी दुष्परिणाम छुपे होते हैं। उदाहरणस्वरूप, वाहनों के उत्पादन और खरीद-बिक्री में बेतहाशा बढ़ोतरी ऑटोमाबाइल कंपनियों के लिए बहार आने की निशानी है, तो वहीं ध्वनि व वायु प्रदूषण को ये काफी हद तक बढ़ाती भी हैं, ट्रॉफिक जाम की समस्या से लेकर एक्सीडेंट से मरने वालों और घायल होने वालों की तादाद यहाँ सालाना लाखों में है। क्या इस आधार पर ऑटोमोबाइल कंपनियों का कारोबार, गाड़ियों के उत्पादन और खरीद-बिक्री को थोड़ा नियंत्रित कर संतुलित किया जा सकता है? जाहिर है कि कोई इसके लिए कतई तैयार नहीं होगा। सबको अपने कारोबार, उत्पादन और बाजार में मुनाफों से और कामगारों को अपने रोजगार से मतलब है। यह ठीक भी है कि प्रदूषण से तो धीरे-धीरे बाद में मरेंगे, यदि रोजगार न हो तो भूख से पहले ही छटपटा कर मरना पड़ेगा। फिर प्रदूषण-नियंत्रक काम-धंधों का क्या होगा? इसी प्रकार 'व्यावसायिक' शिक्षा-ढाँचों के कारण इतने सारे लोग एक ही पेशे की पढ़ाई कर लेते हैं कि उस क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ जाती है, पेशेवरों को अन्यत्र काम ढूँढ़ने पर मजबूर होना पड़ता है, तो दूसरी तरफ कई जगह जरूरत भर भी योग्य लोग नहीं मिल पाते।

दिक्कत यह है कि कारोबार, रोजगार, पेशा, शिक्षा आदि निजी व स्वार्थी हितों तथा दबाव समूहों द्वारा संचालित होने लगे हैं। इसलिए जहाँ दस कामगारों की जरूरत है, वहाँ पाँच से भी काम चलता देखा जा सकता है और पंद्रह भी एडजस्ट हुए हो सकते

हैं, वह भी बिना जरूरत को घटाए-बढ़ाए। अर्थव्यवस्था को मजबूत और रोजगार उपलब्ध कराने के आधार पर ही किसी उद्योग-व्यवसाय का मूल्यांकन सर्वांग नहीं, बल्कि उसकी अहमियत अन्य सभी मानव-विकास परियोजनाओं की संतुलित सापेक्षता में आँकी जानी चाहिए। अब जब विकास के मानक, संसाधन व तरीके साफ होते जा रहे हैं और उन्हें अर्जित करने की क्षमता भी अमूमन प्राप्त होती जा रही है, तो फिर नियोजित और समेकित विकास कार्यक्रम तय करना मुश्किल नहीं होगा। आखिर किस प्रकार सभी शहरों से भिन्न नियोजित ढंग से बसे होने के कारण चंडीगढ़ की अपनी विशिष्टता है। व्यापक सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप नियोजित विकास में अधिक पुख्ता तरीके से रोजगार का सृजन, अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है और उसके भयावह दुष्परिणाम भी नहीं होते।

कार्य की प्रकृति देखकर श्रम किए जाने की परंपरा अब टूटकर धन, रुतबा, सुख-सुविधा की संभावना तलाशकर अपनाए जाने की ओर उन्मुख है, मजबूरी में करने की बात अलग है। समय बीतने के साथ कार्य और श्रम पेशा व रोजगार में तब्दील होता गया है। प्रश्न उठता है कि श्रम कहाँ-कैसे किया जाए और कहाँ नहीं किया जाए? श्रम जितना अच्छे कार्य में लगता है, उतना या उससे कई गुणा अधिक बुरे में भी, अतः ठीक दिशा और नीयत से किया गया श्रम ही सार्थक है, फालतू काम और उसकी व्यस्तता से काम न करना ज्यादा बुरा नहीं है। लेकिन खाली श्रम भी किसी सफलता का प्रथम सोपान तो है ही। इससे मन मजबूत होता है, बौद्धिक क्षमता बढ़ती है, शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है, सौंदर्य निखरता है, रोग-व्याधि, भय दूर भागते हैं, प्रसन्नता आती है और 'खाली मन शैतान का घर' भी नहीं बनता।

आज जो भी छोटी-बड़ी चीजें उपलब्ध हैं, वे सुदीर्ध श्रम-संघर्ष की परिणतियाँ हैं। यह सही है कि श्रम और कार्य से फल-परिणाम तक पहुँचने के दरम्यान मनःस्थितियों, कार्य-पद्धतियों, घात-प्रतिघातों, छल-छद्मों, अवरोधों तथा भाग्य एवं नियति के खेल से गुजरना पड़ता है। इस कार्य-यात्रा में 'करम प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करई सो तस फल चाखा' से आमना-सामना होता है, पर क्या जैसा लोग करना चाहते हैं, उसका अवसर मिल पा रहा है, वही कर पा रहे हैं और वही करने दिया जा रहा है? जब मनचाहा कार्य का अवसर ही नहीं मिला, तो मनचाहा फल कैसे मिलेगा? फिर 'जो जस करई' का प्रश्न ही कहाँ उठता है। श्रीकृष्ण ने जब 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' कहकर कर्म करने को मनुष्य के अधिकार-क्षेत्र में रखा, किंतु फल को अधिकार-सीमा से बाहर बताया, तो यह पुरुषार्थियों के लिए छोटा पुरस्कार न था, क्योंकि फल-प्राप्ति पर अधिकार न सही, कर्म का अधिकार तो मिल ही गया था। आज स्थिति विकट है, बहुत-सारे लोगों को काम का न अधिकार है और न अवसर ही। वे क्षमतावान होकर भी जिस काम को करना चाहते हैं, उनमें पचासों तरह के अड़ँगे पारिवारिक-अपारिवारिक, जातीय-क्षेत्रीय, सामाजिक-असामाजिक, प्रशासनिक-अप्रशासनिक तत्वों द्वारा बिना मतलब अनजाने या जानबूझ कर खड़े किए जाते हैं और व्यक्तिगत समस्या जो रहती है वह तो है ही।

बहरहाल, श्रमपूर्ण कर्म ही जीवन है। यह साधन और साध्य दोनों है; लेकिन इसमें ऊर्जा, उत्साह, लगन, तन्मयता, पूर्णता, रुचि, विवेक, भावना का सम्मिलन जरूरी है। किसी रोजगार, व्यवसाय, पेशे का प्राथमिक लक्ष्य निस्संदेह अर्थोपार्जन है, परंतु इनका बृहत्तर संदर्भ-संबंध सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक ही नहीं, मानवीय उपादेयता के समायोजन से संपूर्ण होता है। तभी 'श्रममेव जयते' भी सार्थक होता है। श्रीकृष्ण के अनुसार, बिना कर्म किए एक क्षण भी जीवन-निर्वाह संभव नहीं है, इसके अभाव में 'निष्कर्मता' और 'समत्व' की स्थिति भी नहीं आती। जब कर्म अकर्म हो जाते हैं, फल उत्पन्न नहीं करते, तब 'निष्कर्मता' की स्थिति होती है, जबकि कर्म के पूर्ण होने या न होने में समभाव रखना 'समत्व' है। कर्म को पूजा कहा जाता है, पर कौन-सा कर्म पूजा है - यह सोचना जरूरी है।